National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 637-640

वेदाध्ययन हेतु वेदाङ्गों की उपादेयता

वागीश मिश्र
शोध छात्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

वेद आर्य संस्कृति के मूल ग्रंथ हैं। वेदों के अध्ययन में सहायक शास्त्र की वेदाङ्ग कहे गये। वेद के मूल पाठ अत्यंत पवित्र हैं, उनके उच्चारण की शुद्धता बनाये रखने, उन्हें अपरिवर्तनीय बनाये रखने व उनके ठीक–ठीक ज्ञान की आवश्यकता हेतु ही वेदाङ्ग साहित्य का आविर्भाव हुआ। वेदांगों द्वारा मंत्रों के अर्थ उनकी व्याख्या व यज्ञ में उनके विनियोग आदि का बोध होता है। वाद में ये स्वतंत्र विषयों के रूप में विकसित हुए। इन ग्रंथों की रचना बड़ी विलक्षण है। छोटे–छोटे अल्प अक्षरों के द्वारा विपुल अर्थों के प्रदर्शन का उद्योग किया गया है।

विद् ज्ञाने धातु से घञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न वेद शब्द का अर्थ है– ''वेत्ति जानाति धर्मादि पुरुषार्थ चतुष्टयोपायान् अनेन इति वेदः।'' अर्थात् जिसके द्वारा धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्ट्य को प्राप्त करने वाले उपायों को जाना जाता है, उसे वेद कहते हैं। आचार्य सायण वेद शब्द का निर्वचन इस प्रकार करते हैं– 'अलौकिकं पुरुषार्थोपायं वेत्ति अनेन इति वेद शब्द निर्वचनम्।

तैत्तिरीय भाष्य भूमिका में सायणाचार्य ने वेद शब्द को बताते हुए कहा है– ''इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारपोरलौकिकंमुपायं यो ग्रन्थों वेदयति सः वेदः।''

अर्थात् जो ग्रन्थ अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति व अनिष्ठ वस्तु के परिहार के लिये अलौकिक उपाय को बतलाता है, वह 'वेद' है।

वेदांग, वेद के अर्थ तथा विषय को समझाने के लिए नितांत उपयोगी है। वेदांग शब्द, वेद तथा अंग इन दो शब्दों से मिलकर बना है। इस प्रकार वेदांग शब्द का अर्थ है, 'वेदस्य अंगानि' अर्थात् वेद के अंग। अंग शब्द का अर्थ है– 'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिरिति अङ्गानि, अर्थात् वे उपकारक तत्व जिनसे वस्तु के स्वरूप का बोध होता है। वेदों के वास्तविक अर्थ के ज्ञान के लिए जिन साधनों की उपयोगिता थी उन्हें वेदांग कहते थे।

वेद के मन्त्रों के उच्चारण के ज्ञान के लिए, शुद्ध शब्दार्थ ज्ञान के लिए, विनियोग के लिए, काल निर्धारण के लिए तथ छन्दों ज्ञान के लिए सहायक साहित्य की आवश्यकता प्रतीत हुए अतएव एक–एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए विभिन्न छः वेदांगों का प्रणयन हुआ। छः वेदांग हैं– शिक्षा, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरूक्त तथा कल्प।

> ''शिक्षा व्याकरण छान्दो निरूक्तं ज्योतिषं तथा।
> कल्पश्चेति षडंगानि वेदस्याहुर्मनीषिणः'' ।।

शब्दों के उच्चारण की शुचिता बनाये रखने हेतु शिक्षा ग्रन्थों का आविर्भाव हुआ। वैदिक शब्दों के व्युत्पत्ति लभ्य अर्थों के ज्ञान व उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों के संचालन के ज्ञान हेतु व्याकरण ग्रन्थों की रचना हुई।

वेदों में गायत्री, जगति आदि छन्दों की रचना एवं उच्चारण आदि के लिए छन्द शास्त्र का प्रणयन हुआ। शब्दों की रचना किस प्रकार हुई, उनके मूल अर्थ व पारिभाषिक अर्थ क्या–कया हैं इसके ज्ञान के लिए निरूक्त शास्त्र बना। यज्ञ आदि कर्मों के शुभ–अशुभ काल के ज्ञान हेतु ज्योतिष शास्त्र की रचना हुई। यज्ञीय कर्मकाण्ड में कौन से मंत्र पढ़े जाए, यज्ञ की वेदी की रचना कैसी हो इन आवश्यकताओं हेतु कल्प ग्रन्थों की रचना हुई। सर्वप्रथम वेदांग के भेदों का उल्लेखन मुण्डक उपनिषद् में अपरा विद्या के अन्तर्गत चार वेदों के नामोल्लेख के बाद हुआ है।

तत्रा परा ऋग्वेदों, यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पोव्याकरणम् निरूक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। (मुण्डक उपनिषद, 1–1–5)

पाणिनीय शिक्षा में वेद पुरुष के अंगों के रूप में 6 वेदांगों का वर्णन है– छन्द वेद पुरुष के पैर हैं, कल्प हाथ हैं, ज्योतिष नेत्र हैं, निरूक्त कान हैं, शिक्षा नासिका हैं व्याकरण मुख है–

> छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
> ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरूक्तं श्रोतमुच्यते।।
> शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
> तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।

शिक्षा– वेदाङ्गों में शिक्षा ग्रन्थ से तात्पर्य है, वह ग्रन्थ जो उच्चारण की शिक्षा प्रदान करे। वस्तुतः वेद मन्त्रों में उच्चारण का सही ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है कि मंत्र के उच्चारण में यदि स्वर या वर्ण की थोड़ी भी त्रुटि हो जाती है तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उसका उदाहरण दिया गया है–'इन्दशत्रुर्वर्धस्व'।[1] वृत्त ने इन्द्र को मारने के लिये यज्ञ किया कि इन्द्र शत्रु अर्थात् वृत्त की जीत हो। वेद पाठियों ने स्वर की त्रुटि कर दी, जिसका फल यह हुआ कि इन्द्र की जीत हुई व वृत्त मारा गया। ''इन्द्र शत्रुः' शब्द में दो पद हैं–इन्द्र व शत्रु यदि आदि पद को उदात्त समझा जाये तो इसका विगह बहुबीहि समास में 'इन्द्रः शत्रुः यस्य सः' होगा अर्थात् ''इन्द्र उसको मारने वाला'' होगा। यदि अन्तिम पद को उदात्त माना जाये तो इसका विग्रह तत्पुरुष समास में 'इन्द्रस्य शत्रुः' होगा अर्थात् 'इन्द्र को मारने वाला होगा'। इस प्रकार के स्वर के परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन हो जाता है। इसी प्रकार के अनर्थ से बचने के लिये ही स्वरों के ज्ञान की महत्ता प्रतिपादित की गयी। आज भी हमारा मस्तक महाभाष्य में उल्लिखित उन गुरूप्रवर के प्रति श्रद्धा से अवनत हो जाता है जो उदात्त के स्थान पर अनुदात्त स्वर का उच्चारण करने वाले अपने शिष्य के मुँह पर चाटा लगाकर उसके उच्चारण को शुद्ध कराते थे।[2]

आचार्य सायण ने 'ऋग्वेद भाष्य भूमिका' में शिक्षा का अर्थ यह बताया है–स्वरवर्णाद्युच्चरणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा'' अर्थात् जिससे स्वर वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है, उसे शिक्षा कहते हैं। शिक्षा ग्रन्थें का वैदिक संहिताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस प्रकार शरीर के अन्य सभी अंग सुदृढ़ हो पर घ्राण शक्ति के बिना पुरुष अशोभनीय हो जाता है उसी प्रकार

शिक्षा–नामक वेदांग से विरहित होने पर वेद पुरुष भी वीभत्स या अशोभन दिखायी पड़ता है। उपलब्ध शिक्षाग्रन्थ पैंतीस (35) हैं जिनमें मुख्य शिक्षा ग्रन्थ इस प्रकार हैं–
ऋग्वेद की पाणिनीय शिक्षा, शुक्ल यजुर्वेद की याज्ञवल्क्य शिक्षा, कृष्ण यजुर्वेद की व्यास शिक्षा, सामवेद की नारद शिक्षा व अथर्ववेद की नारदीय शिक्षा। इसके अतिरिक्त भारद्वाज शिक्षा, वशिष्ठ शिक्षा, पराशर शिक्षा आदि ग्रन्थ भी महत्व के हैं।
तैत्तिरीय संहिता भारद्वाज शिक्षा से सम्बन्धित है। यह संहिता शिक्षा के नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्रधान लक्ष्य संहिता के पदों की शुद्धता है व उसके लिये विशिष्ट नियमों का विवरण है व कहीं–कहीं विशिष्ट शब्दों का संकलन भी प्राप्त होता है।
तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा के छः (6) अंगों का वर्णन है– वर्ण, स्वर, मात्रा, बल व सन्तान।[3]

वर्ण – संस्कृत वर्णमाला में तिरसठ (63) वर्ण हैं। संस्कृत अ को विवृत्त अ से पृथक मानने पर चौंसठ (64) वर्ण हैं।[4]

स्वर – उदात्त अनुदात्त स्वरित तीन प्रकार है। वेदों में स्वर भेद से अर्थ भेद हो जाता है।

मात्रा – मात्राएं तीन हैं– ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत।

बल – वर्ण के उच्चारण में उनकी ध्वनि को व्यक्त करने में जो प्रयास करना पड़ता है वही बल (प्रयत्न) कहलाता है।

आभ्यनतर व बाह्य के भेद से यह दो होता है।
साम – साम अर्थात् स्पष्ट व सुस्वर से वर्णोच्चारण। वर्णों का स्पष्ट उच्चारण हो किसी वर्ण को दबाकर न बोलें। बहुत शीघ्रता से न बोलें, स्वर व अर्थ ज्ञान के सहित प्रत्येक वर्ण का स्पष्ट उच्चारण करें।

संतान – संहिता पाठ या पद पाठ में प्रयुक्त शब्दों में सही नियमों का पालन होना। सन्धि नियमों का ज्ञान व उनका यथा स्थान प्रयोग करना।

छन्द – छन्द के ज्ञान से व्यतिरिक्त होकर वेदमन्त्रों को ठीक–ठीक नहीं समझा जा सकता। मन्त्र छन्दोबद्ध हैं। अतः छन्द का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। शौनक विरचित ऋक प्रातिशाख्य के अन्त में छन्दों का पर्याप्त विवेचन है। परन्तु इसका एकमात्र स्वतन्त्र ग्रन्थ आचार्य पिङ्गल विरचित छन्दः सूत्र है।
छन्दस् (छन्द) शब्द छद् (ढकना) धातु से निष्पन्न है। यास्क ने निरूक्त में छन्दस का निर्वचन दिया है– छन्दांसि छादनात् अर्थात् छन्द भावों को आच्छादित करके उसे समष्टि रूप प्रदान करता है। इसके कारण छन्द गेय व सुपाठ्य हो जाते हैं। कात्यायन ने सर्वानुक्रमणी (12.6) में छन्द का लक्षण दिया है–यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः जिसमें वर्णों या अक्षरों की संख्या निर्धारित होती है उसे छन्द करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि वैदिक छन्दों का आधार अक्षर या वर्णों की संख्या है।

प्राचीन छन्द विषयक सामग्री निम्नलिखित ग्रन्थों से प्राप्त होती है–
1. शांखायन श्रौत सूत्र (7.27 में)
2. ऋग्वेद प्रातिशाख्य– पटल 16–18
3. सामवेद का निदान सूत्र
4. पिंगल प्रणीत छन्द सूत्र
5. कात्यायन कृत दो छान्दोऽनुक्रमणियाँ

छन्दों के दो भेद हैं– अक्षर गणनानुसारी व पादाक्षर गणनानुसारी

अक्षर गणनानुसारी – इसमें केवल छन्दों में अक्षर गणना की जाती है। अतः जिन छन्दों में पाद के विभाग की आवश्यकता नहीं रहती वे अक्षरगणनानुसारी माने जाते हैं।

पादाक्षरगणनानुसारी – जिन छन्दों में अक्षरों के पादों में नियमतः विभक्त होने की व्यवस्था है वे पादाक्षर गणनानुसारी कहे जाते हैं।

प्रमुख वैदिक छन्दों के नाम अधोलिखित हैं–
1. गायत्री
2. उष्णिक
3. वृहती
4. पंक्ति
5. त्रिष्टुप
6. जगती

इनके अतिरिक्त अतिजगती, अतिशक्वरी, अष्टि इत्यादि।

व्याकरण – वेदांग के इस भाग का प्रमुख उद्देश्य वेदों के अर्थ को समझाना व वेदार्थ की रक्षा करना है। वेद पुरूष का मुख व्याकरण है– 'मुखं व्याकरणं स्मृतम्।' पुरुष में मूलतः मुख ही अभिव्यक्ति व विश्लेषण का साधन है उसी प्रकार व्याकरण भी पद–पदार्थ व वाक्य–वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति व प्रकृति–प्रत्यय के विश्लेषण का साधन है।
''व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्'' अर्थात् जिसके द्वारा प्रकृति प्रत्यय का विवेचन किया जाता है।
व्याकरण शास्त्र को दो भागों में बाँटा जा सकता है–
1. लौकिक व्याकरण 2. वैदिक व्याकरण

लौकिक व्याकरण के प्रधान आचार्य पाणिनि, पतंजलि आदि आचार्य हैं व अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि ग्रन्थ है। वैदिक व्याकरण के प्रतिनिधि ग्रन्थ प्रातिशाख्य है।

कात्यायन व पतंजलि के व्याकरण के पाँच प्रयोजन बताये हैं–
1. रक्षा– वेदों की रक्षा।
2. ऊह–यथास्थान विभक्ति आदि का परिवर्तन।
3. आगम– निष्काम भाव से वेदादि का अध्ययन।
4. लघु– संक्षेप में शब्द ज्ञान
5. असन्देह– सन्देह निराकरण

रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्– महाभाष्य आ0।
पतंजलि ने महाभाष्य आह्निक एक में ऋग्वेद के एक मंत्र का व्याकरणपरक अर्थ किया है–

> चत्वारि श्रृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
> त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आ विवेश्ज्ञं[5]

अर्थात् शब्दब्रह्म (व्याकरण) रूपी वृषभ के चार सींग हैं– नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात। उसके तीन पैर हैं–वर्तमान, भूत व भविष्यत् काल। उसके दो सिर हैं, सुप् व तिङ् प्रत्यय। उसके सात हाथ है–प्रथमा द्वितीया आदि सात विभक्तियाँ। यह तीन स्थानों पर बँधा है, उर, कण्ठ व सिर में। ऐसा शब्दब्रह्मरूपी महादेव मनुष्यों के शरीर में व्याप्त है।

व्याकरण शास्त्र के महत्व को प्रतिपादित करते हुए महाभाष्यकार का कथन है– ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गों वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च, प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम् प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति।

अर्थात् किसी कारण से नहीं अपितु कर्तव्य बुद्धि से व्याकरण आदि अंगों सहित वेद के अध्ययन को अनिवार्य बताते हुए षडङ्गों में व्याकरण की प्रधानता स्पष्ट है।

निरुक्त

निरुक्त में वैदिक शब्दों के निर्वचन की पद्धति दी गयी है। वर्तमान में यास्ककृत (800 ई0पू0) निरुक्त ही इस सम्बन्ध में प्रामाणिक ग्रन्थ मिलता है। जो कि 'निघण्टु नामक वैदिक शब्द कोश पर आधारित है व उसी का व्याख्यात्मक ग्रन्थ है। यास्क का मत है कि समस्त शब्द धातुओं से उत्पन्न है।

अतः उनकी व्युत्पत्ति दिखलाने का प्रयत्न भी इस ग्रन्थ में किया गया है।

निरुक्त शास्त्र की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए यास्क कहते हैं कि ''निरुक्त के अध्ययन के बिना, मन्त्रों के अर्थ का ज्ञान नहीं हो सकता।[6] निरुक्त के द्वारा मन्त्रों के अर्थ का ज्ञान या मन्त्रों के अर्थ करने की पद्धति का ज्ञान तो होता ही है साथ ही अनेक वैदिक व लौकिक दुरूह शब्दों का निर्वचन करने का ढंग भी ज्ञात होता है। इसलिये निरुक्त को व्याकरण शास्त्र की परिपूर्णता मानी गयी है। इसके अतिरिक्त वेदों के पद पाठ व देवता आदि के ज्ञान के विषय में निरुक्त पर्याप्त सहायक ग्रन्थ हैं। इसलिये वेदाध्ययन की दृष्टि से व्याकरण के समान अथवा उससे कहीं अधिक निरुक्त का महत्व माना जाता रहा है।

निरुक्त के अन्तर्गत वैदिक मन्त्रों की निर्वचनात्मक व्याख्या की गयी है। ऐसी वेदार्थ पद्धति को निरुक्त पद्धति के नाम से जाना जाता है। आचार्य यास्क ने वैदिक देवता वाची शब्दों यथा—अग्नि, इन्द्र, वरूण, सविता आदि को निर्वचनात्मक मानकर इनसे सम्बन्ध रखने वाले मन्त्रों के चार प्रकार के अर्थ प्रस्तुत किये हैं– आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक व अधियज्ञ। स्वामी दयानन्द ने यास्क कृत प्रक्रिया को प्रामाणिक माना है व तदनुसार ऋग्वेद व यजुर्वेद का भाष्य किया है।

यास्क कृत 'निरुक्त' ही संप्रति उपलब्ध है। इसमें 12 अध्याय हैं। अन्त में परिशिष्ट के रूप में 2 अध्याय है। इस प्रकार यह 14 अध्यायों में विभक्त है। निरुक्त का प्रथम अध्याय भूमिका है। अध्याय 2 व 3 में निघण्टु के प्रथम द्वितीय व तृतीय अध्याय में पठित शब्दों का विवेचन है। अतः निरुक्त के अध्याय 4 से 6 को नैगम काण्ड कहते हैं। इसमें निघण्टु के अध्याय 4 के शब्दों की व्याख्या है।

निरुक्त के अध्याय 7 से 12 को दैवत काण्ड कहते हैं। इन 6 अध्यायों में निघण्टु के अध्याय 5 में संकलित 252 देव विषयक शब्दों की सोदाहरण व्याख्या है।

निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय पाँच बताये गये हैं–

1. वर्णागम 2. वर्ण विपर्यय 3. वर्णविकार 4. वर्णनाश
5. धातुओं का अनेक अर्थों में प्रचीण।

> ''वर्णागमे वर्णविषर्यायश्च द्वौ चापरौ वर्णविकार नाशौ।
> धातोस्तदर्धातिशयेन योगस्तदुच्यते पंचविधं निरुक्तं।।

भाषा शास्त्र की दृष्टि से निरुक्त का बहुत महत्व है। इसमें शब्द के मूल का ज्ञान कराया जाता है। शब्द के अर्थ का किस प्रकार विकास होता है, किस प्रकार एकार्थक शब्द अनेकार्थक हो जाते हैं व विभिन्न अर्थों वाले शब्द एकार्थक हो जाते हैं, शब्दों के अर्थों में परिवर्तन कैसे होता है, इत्यादि का विवेचन निरुक्त में प्राप्त होता है। यह शास्त्र प्राचीन आचार्यों के भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण व उनके चिन्तन मनन का द्योतक हे।

ज्योतिष

वेदांगों में ज्योतिष का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वेद की प्रवृत्ति यज्ञ के सम्पादन हेतु है व यज्ञ की विधा विशिष्ट समय की अपेक्षा रखता है। यज्ञ—याग के लिये समय—शुद्धि की बड़ी आवश्यकता होती है।

ज्योतिष का अर्थ है– ज्योतिर्विज्ञान। सूर्य, चन्द्र, ग्रह आदि आकाशीय पदार्थों की गणना ज्योतिर्मयपदार्थों में है। इनसे सम्बन्ध विज्ञान को ज्योतिष या जयोतिर्विज्ञान कहते हैं।

इस वेदांग से सम्बन्ध एक ही प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध है। वह है महर्षि लगध कृत वेदाङ्ग ज्योतिष। यह ग्रन्थ दो भागों में मिलता है। एक का नाम है 'आर्ष ज्योतिष' व दूसरे का नाम है 'याजुष ज्योतिष'। प्रथम भाग में 36 श्लोक हैं व द्वितीय भग में 83। ग्रन्थ की भाषा अत्यन्त क्लिष्ट व दुरूह है। दोनों भागों में कहा गया है कि यह ग्रन्थ यज्ञकार्य के लिये शुभ मुहूर्त आदि का ज्ञान कराने हेतु लिखा गया है।[7]

कल्प

कल्प का अर्थ है—याज्ञेय विधियों का समर्थन व प्रतिपादन। ऋग्वेद भाष्य भूमिका में आचार्य सायण कल्प शास्त्र को बतलाते हुए कहते हैं– कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगीरत्र इति व्युत्पतेः। कल्प की दूसरी व्याख्या है—कल्पो वेद विहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पना शास्त्रम।[8] अर्थात् जिस शास्त्र में वैदिक कर्मों का व्यवस्थित रूप से वर्णन या प्रतिपादन होता है।

कल्प सूत्र चार (4) भागों में विभाजित हैं–

(1) श्रौत सूत्र (2) गृह्य सूत्र (3) धर्मसूत्र (4) शुल्व सूत्र

1. श्रौत सूत्र – इसके अन्तर्गत ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित व अन्य महत्वपूर्ण वैदिक यज्ञों का क्रमशः विवेचन है। ये यज्ञ हैं– दर्शपौर्णमास, सोमयाग, सौत्रामणी, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध आदि।

प्रमुख श्रौत सूत्र इस प्रकार से हैं

1. ऋग्वेदीय– आश्वलायन व शांखायन
2. शुक्ल यजुर्वेदीय– कात्यायन श्रौतसूत्र
3. कृष्ण यजुर्वेदीय– बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी या सत्याषाढ, वैखानस, भारद्वाज मानव व वाराह श्रौतसूत्र
4. सामवेदीय– आर्षेय, लाट्यायन, द्राह्यायण व जैमिनी श्रौत सूत्र
5. अथर्ववेदीय– वैतान श्रौतसूत्र

2. गृह्यसूत्र – गृह्यसूत्रों का सम्बन्ध गृहस्थ जीवन से है। गृहस्थ जीवन के सभी संस्कार इसमें संगृहीत हैं। चारों वेदों से सम्बद्ध गृह्यसूत्र निम्नलिखित है–

2(i) ऋग्वेदीय– आश्वलायन, शांखायन व कौषीतकि गृ0सू0
1. शुक्ल यजुर्वेदीय– पारस्कर गृहय सूत्र
2. कृष्ण यजुर्वेदीय– बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, भारद्वाज, मानव व काठक गृह्य सूत्र।
3. सामवेदीय– द्राह्यायण, गोमिल, खादिर व जैमिनीय गृह्यसूत्र
4. अथर्ववेदीय– कौशिक गृहयसूत्र

3. धर्मसूत्र

धर्मसूत्रों में चारों वर्णों, आश्रमों के कर्तव्यों, रीति, धर्म, नीति, प्रथाओं व सामाजिक नियमों का विवेचन है। प्रमुख धर्मसूत्र निम्न हैं–

1. ऋग्वेदीय–वसिष्ठ व विष्णु धर्मसूत्र
2. शुक्ल यजुर्वेदीय– हारीत व शंख धर्मसूत्र
3. कृष्ण यजुर्वेदेयी– बौधायन, आपस्तम्ब व हिरण्यकेशी
4. सामवेदीय– गौतमधर्मसूत्र

शुल्व सूत्र

शुल्व सूत्रों में यज्ञवेदी के निर्माण से सम्बद्ध नाप आदि का व वेदी के निर्माण के नियम व प्रक्रियाओं का विवेचन है। ये श्रौत–सूत्रों से सम्बद्ध विषयों का वर्णन करते हैं। इनमें भारतीय ज्यामिति के विकास का उत्कृष्ट रूप मिलता है।

प्रमुख शुल्व सूत्र निम्न है

1. शुक्ल यजुर्वेदीय– कात्यायन शुल्वसूत्र
2. कृष्ण यजुर्वेदीय– बौधायन, आपस्तम्ब व मानव शुल्व सूत्र

अतः स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में वेदांग स्वतन्त्र विषय न होकर वेदाध्ययन के विशिष्ट उपयोगी साधन थे। परन्तु बाद में वेद मन्त्रों के उच्चारण के ज्ञान के लिये, शुद्ध शब्दार्थ ज्ञान के लिये, विनियोग के लिये, काल निर्धारण के लिये व छन्दो ज्ञान के लिये, वेदांगों का अध्ययन आवश्यक हो गया व वेदांग स्वतंत्र विषय के रूप में विकसित एवं पल्लवित हुए।

संदर्भ

1. मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यज्ञमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु स्वरतोऽपराधात्।।–पाणिनीय शिक्षा–52
2. उदात्तस्य स्थाने अनुदात्तं ब्रूतेः खण्डिकोपाध्यायः तस्यैशिष्याय चपेटिकां ददाति। (पाणिनी शिक्षा 1/1/1 पर पतंजलि।
3. वर्ण स्वरः मात्रा बलम् साम सन्तानः इत्युक्तः शीक्षाध्यायः–तैत्तिरीय उपनिषद् (1–2)
4. त्रिषष्टिश्चतुः षाष्टिर्वा वर्णाः शंभुमतेमताः– पाणिनीय शिक्षा (3)
5. ऋक् 4.58.3
6. अथापि इदम् अन्तरेण मन्त्रेषु अर्थ प्रत्ययो न विद्यते।
7. ज्योतिषामयनं कृत्स्नं, प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः
   विप्राणां संमतं लोके, यज्ञकालार्थसिद्धये। (आर्ष ज्योतिष–3)
8. विष्णुमित्र कृत ऋक्प्रातिशाख्य टीका